RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

POSTAGE PRE-PAID
MAIL BUSINESS CENTRE
04 FEB 2016
JALANDHAR CITY

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 72 अंक :45
सृष्टि संवत् 1960853116
7 जनवरी 2016
दयानन्दब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726
जालन्धर

वर्ष–72, अंक : 45, 4/7 फरवरी 2016 तदनुसार 25 मार्गशीर्ष सम्वत् 2072 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

महान् तपोनिष्ठ आचार्य बलदेव जी

सुदर्शन शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

आर्य जगत् के वयोवृद्ध विद्वान्, कर्मयोगी, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वेद-वेदांगों के ज्ञाता, गौपालक आचार्य बलदेव जी महाराज का इस संसार से जाना आर्य जगत् के लिए अपूरणीय क्षति है। आचार्य बलदेव जी का सम्पूर्ण जीवन गो सेवा, राष्ट्र सेवा व समाज सेवा के कार्यों के प्रति हमेशा समर्पित रहा। 28 जनवरी 2016 को उनके निधन की खबर ने सम्पूर्ण आर्य जगत् को शोकाकुल कर दिया। 85 वर्ष की आयु में उन्होंने अपने इस पाञ्चभौतिक तत्वों से बने शरीर का त्याग किया।

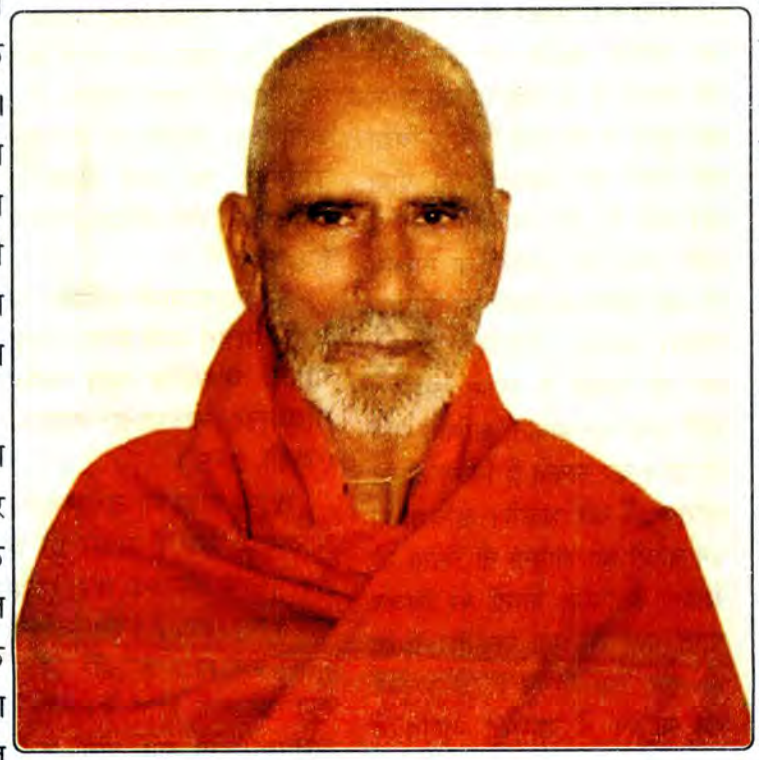

आचार्य बलदेव जी ने युवावस्था में ही सरकारी नौकरी को छोड़कर अपने जीवन को समाज सेवा के कार्यों के लिए पूरी तरह से समर्पित कर दिया। गऊओं के प्रति उनके मन में अत्यधिक प्रेम था। उनका मानना था कि जिस गाय से हमें अमृत के तुल्य दूध मिलता है उन्हें हम अन्तिम समय में कसाईयों के हाथों कटने के लिए क्यों छोड़ देते हैं? इसलिए आचार्य बलदेव जी जहां कहीं भी बेसहारा छोड़ी गई गायों को देखते थे तो गौशाला में ले जाकर उनकी सेवा करते थे और उन्हें कसाईयों से बचाते थे।

आर्य जगत् के प्रसिद्ध गुरूकुल कालवां की उन्होंने हरियाणा में स्थापना की और एक दीपक की भांति अपनी वेद विद्या रूपी ज्ञान के प्रकाश से अनेक विद्वानों तथा संन्यासियों का निर्माण किया। आचार्य बलदेव जी का आदर्श जीवन आर्य जगत् के लिए प्रेरणा का स्रोत है। योग के माध्यम से भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार विश्व भर में करने वाले योग गुरू स्वामी रामदेव जी ने आचार्य श्री के चरणों में बैठकर वेद विद्या का ज्ञान अर्जित किया है। आचार्य बलदेव जी से शिक्षा पाकर कई विद्वान् आर्य जगत् की अतुलनीय सेवा कर रहे हैं। आचार्य बलदेव जी सरलता, सहजता, संयम और सदाचार की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने गौ सेवा के साथ-साथ आर्य समाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के प्रति अपना जीवन समर्पित किया था। गुरूकुल झज्जर के आचार्य स्वामी ओमानन्द जी के सम्पर्क में आकर उनके प्रवचनों का चमत्कारी प्रभाव आपके ऊपर होता रहा। स्वामी ओमानन्द जी के सम्पर्क में आकर आपने वैदिक धर्म के प्रति अपना जीवन समर्पित कर दिया। आचार्य बलदेव जी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। संस्कृत का सम्पूर्ण आर्ष व्याकरण आपको मृत्यु के समय तक कण्ठ था। आचार्य बलदेव जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार व्यतीत किया। संयम और त्याग का जीता-जागता उदाहरण आचार्य बलदेव जी थे। मनसा, वाचा, कर्मणा आर्य सिद्धान्तों के प्रति समर्पित थे। उनकी करनी और कथनी में कोई अन्तर नहीं था। आचार्य बलदेव जी ईश्वर भक्त, वेद भक्त, कर्मयोगी व धर्म व संस्कृति के उन्नायक थे।

आर्य समाज के समर्पित सिपाही आचार्य बलदेव जी का निधन आर्य जगत् के लिए ऐसी क्षति है जिसकी भरपाई कर पाना कठिन है। मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से आचार्य बलदेव जी को हार्दिक श्रद्धाजंलि अर्पित करता हूं, त्यागी, तपस्वी महात्मा को हृदय से नमन करता हूं। परमात्मा करे वह पवित्र आत्मा शांति को प्राप्त करे तथा हमें इतना सामर्थ्य प्रदान करे कि हम उनके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलते हुए आर्य समाज के प्रचार-प्रसार को आगे बढाएं। परमपिता परमात्मा उस पवित्र आत्मा को शांति एवं सद्गति प्रदान करे यही प्रार्थना करता हूं।

वैदिक संदेश

-ले० स्वामी रामानंद सरस्वती गुरुकुल आश्रम सलखिया ज़िला रामगढ़

वेदों और उपनिषदों में जो सारगर्भित संदेश है उन्हें हमने भुला दिया है एवं उनके सारगर्भित शब्दों को अपने ढंग से परिभाषित कर उसका रूप ही विकृत कर दिया है, जिसका दुष्परिणाम हमारे सामने है। आज मनुष्य केवल भौतिकवादी मशीन बन कर रह गया है। वह मानने लगा है कि धन ही, एवं भौतिक विलासिता के साधन ही उसके जीवन का लक्ष्य है। उनके द्वारा ही उसे शांति सम्मान प्राप्त हो सकता है। इसलिए जीवन की पूरी दौड़ इन्हीं साधनों को प्राप्त करने में लग जाती है और अंत को उपलब्धि केवल अशांति, संताप होती है। इसका मूल कारण अविद्या है एवं विद्या का अभाव है, और यही कारण था, युग प्रर्वतक ऋषि का संदेश "विद्या की वृद्धि और अविद्या का नाश ताकि संसार में रह कर मनुष्य आनंद और शांति को उपलब्ध हो सके।"

प्रचलित अर्थों में न तो हमने विद्या को जाना है और न ही अविद्या को। हमने उसे अपने ढंग से ही परिभाषित किया है। प्रचलित अर्थों में हमने विद्या का अर्थ सिर्फ इतना ही जाना है कि पढ़ना, लिखना, इंजीनियर बन जाना, डॉक्टर बन जाना, आई. एस. कर लेना और इसे प्राप्त कर ऊंचे ओहदों पर बैठकर धन कमाना मान लिया है और यही कारण है कि शिक्षा का आज व्यवसायीकरण भी हो गया है। ज्यादा से ज्यादा पढ़कर भौतिक साधनों से सम्पन्न बनना केवल लक्ष्य बन गया है। अविद्या को हमने जोड़ दिया है अशिक्षा से गंवारपन से, बेपढ़ा लिखा होने से वे इसलिए शासन भी साक्षरता अभियान चलाये हुए है। नित नए विद्यालय भी खुल रहे हैं किन्तु जीवन में नैतिकता का अभाव है। यदि ऋषि आज होते जिन्हें हम विद्यालय मानते हैं उसे अविद्यालय कहते।

उपनिषद के ऋषियों ने उसकी सारगर्भित व्याख्या कर जीवन को जीवन बनाने का संदेश दिया है जो हमारी स्वाध्यायहीनता के कारण उपेक्षित एवं विस्मृत हो गए हैं।

ऋषि विद्या और अविद्या की गहनतम व्याख्या कर कहते हैं।

"अन्य देवाहुर्विद्यायां अन्यदाहुरविद्याया। इति शुश्रुम धीरांणाम ये नस्तत् विच चिक्षिरे ईशोपनिषद। 10" ऋषि व्याख्या कर कहते हैं कि विद्या कुछ और है अविद्या कुछ और है इसे जानना चाहिए। क्योंकि बिना इसके अर्थों को जाने हम अपने जीवन को सही दिशा नहीं दे सकते और न ही दशा सुधार सकते हैं। ऋषि न तो विद्या के केवल प्रशंसक रहे और न ही अविद्या के आलोचक रहे है क्योंकि जब तक हम दोनों को न जानें तो कैसे उत्तम विकल्प चुन सकते हैं। इसलिए ऋषि कहते हैं।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।

ऋषियों की मान्यता रही है कि इन दोनों को अर्थात विद्या अविद्या को जानना चाहिए जो इन दोनों को जानते हैं वे अविद्या को प्राप्त कर मृत्यु से तर जाते हैं और विद्या को प्राप्त कर अमरत्व को प्राप्त कर लेते हैं। इसे सरलतम ढंग से और समझे तो अविद्या के माध्यम से आप जीवन के कष्टों का निवारण डॉक्टर बनकर, वैज्ञानिक बनकर कर तो सकते हैं किन्तु अमरत्व नहीं प्राप्त कर सकते, क्षणिक सुख तो प्राप्त कर सकते हैं किन्तु आनंद प्राप्त नहीं कर सकते। अविद्या से इन कष्टों का सामना तो किया जा सकता है किन्तु कष्टों पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। विद्या ही एक ऐसा साधन है जो मनुष्यों को जीवन में शाश्वत आनंद दे सकता है। सार-असार को जानकर मनुष्य सांसारिक कष्टों से मुक्त हो जाता है। इस भेद को और स्पष्ट करते हुए कठोपनिषद के ऋषि यम नचिकेता के संवाद को माध्यम बनाकर और अधिक स्पष्ट करते हैं यमाचार्य अपने शिष्य नचिकेता को आत्मज्ञान देते हुए कहते हैं।

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता

विद्या भीप्सि नचिकेत सं मन्ये न त्वा कामा वहवोऽलोलुपन्त।

यमाचार्य अपने शिष्य को कहते हैं कि हे शिष्य नतिकेता विद्या और अविद्या दोनों एक दूसरे से विपरीत हैं। तू विद्या को चाहने वाला है अर्थात् अनेकों सांसारिक प्रलोभन को मेरे द्वारा मुझे दिया गया किन्तु तू इस जाल में नहीं फंसा, तू जानता है कि ये सारे सांसारिक प्रलोभन केवल क्षणिक सुख देने वाले हैं एवं नश्वर हैं। आज नहीं तो कल इन्हें छोड़ना होगा चाहे राजी से या बेराजी से, इस कारण तू विद्या का प्रेमी है अविद्या तेरे जीवन में है ही नहीं। लालसा है वांछा है तेरी विद्या की क्योंकि नऽवा कामा बहवोऽ लोलुपन्त। विषयों के भोगों के प्रति तेरा आर्कषण नहीं है क्योंकि तू जानता है ये कष्ट देंगे भोगों में फंस कर इंद्रियों को जर्जर करेंगे जिसका अंत दुखदायी ही होगा।

यदि इस सारगर्भित दृष्टांत को हम आत्मसात कर लेते हैं तो कष्टों से मुक्त हो जाते हैं। यही सब समझाने का प्रयास हमारे ऋषियों का रहा है। मनुष्य जब इन प्रलोभनों में नहीं फंसता और सच्चिदानंद के सान्निध्य को प्राप्त हेतु उस मार्ग पर चलता है तो वह विद्या को जानता है। इससे विरत होकर जब सांसारिक सुखों और भोगों में फंस कर अनेकों कष्ट सहता है तब जानो वह अविद्या से ग्रसित है। उपनिषद का अर्थ विद्या और अविद्या को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

अविद्यायामन्तरे वर्तमानः स्वयं धीराः पंडितं मन्य मानाः। दन्द्रम्य माणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमानाः नीयमानाः यथान्धाः। (कठो. 2-5)

मनुष्य थोड़ा सा अधकचरा ज्ञान प्राप्त कर लेता है साक्षर हो जाता है। पुस्तकें कंठस्थ कर स्वयमेव पंडित बन जाता है। बड़े-बड़े पोथी पुराण रच लेता है और अंदर से खुद खोखला होता है। परंतु वह सुजारवा होते हुए अंधा है और अंधों की केवल अगुवाई करता है। जीवन के श्रेय मार्ग को खोज नहीं पाता एवं प्रेय मार्ग से फंसा हुआ अपने जीवन को भी नष्ट करता है और दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता है। छान्दोग्य उपनिषद में इसका भेद स्पष्ट करते हुए ऋषि ने नारद सनत कुमार का दृष्टांत दिया नारद सनत कुमार के पास जाकर कहने लगे हे भगवान् मुझे विद्या का दान कीजिए। इसके प्रत्युत्तर में सनतकुमार पूछते हैं कि हे नारद! तुमने अब तक क्या सीखा है? जब तक आचार्य यह ज्ञान न ले कि शिष्य की योग्यता कहां तक है तब तक आगामी ज्ञान देने की सार्थकता नहीं होती। नारद कहते हैं।

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधि वाकोवाक्यं एकायतनं देव विद्यां ब्रहाविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्प देवजनविद्यां एतत् भगवोऽध्येमि। (छादोग्य उपनिषद 6-9)

नारद कहते हैं हे ऋषि जहां तक शास्त्रों का प्रश्न है मैंने सब पढ़ा वेद भी पढ़ा जितना पढ़ना चाहिए उतना पढ़ा किन्तु एक खालीपन मेरे अंदर भरा हुआ मैं ऐसा महसूस करता हूं कि सब कुछ जानकर भी अधूरा हूं। एक पीड़ा, एक संताप आज भी मेरे अंदर है इसे और स्पष्ट करते हुए नारद कहते हैं-

सोऽहम् भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविद। सोऽहम भगवः शोचामि।

तं मा भगवन शोकस्य पारं तारयतु।

हे भगवान पढ़ा सब कुछ पंडित भी हो गया मंत्र विद भी बन गया किन्तु आत्म वित नहीं हो पाया। इतना सब कुछ होने के बाद पंडित कहलाने लगा और ऐसा समझने लगा कि अब मुझे दुख नहीं सता सकता, कष्टों से मुक्त हो जाऊंगा किन्तु यह मात्र मेरा भ्रम ही सिद्ध हुआ है क्योंकि जब शोक आता है डूब जाता हूं। पीड़ा सहने की क्षमता भी खो चुका हूं। इतना सब पढ़ने के बाद भी मुझे प्राप्त क्या हुआ केवल कोरा पंडित ही तो रहा आत्मा में मेरे आज भी अशांति है और तलाश आज भी शांति की है।

विद्या और अविद्या के अंतर को और अधिक स्पष्ट करते हुए बृहदारण्यक में ऋषि ने बहुत ही मार्मिक प्रकाश डाला है। याज्ञवल्क्य ऋषि एवं मैत्रेयी के संवाद के माध्यम से संसार को विद्या अविद्या का सूक्ष्मतम अंतर को समझाने का प्रयास किया है। याज्ञवल्क्य जब अपना सफल दाम्पत्य जीवन बिताने के उपरांत सब कुछ छोड़कर वनों में उपासना हेतु जाने की योजना बनाते हुए अपनी धर्म पत्नी मैत्रेयी को कहते हैं कि मैंने आज तक जो भी धन संपदा एकत्र की है वह तुझे सौंप कर वनों में उपासना के लिए जा रहा हूं। तुझे यह संपत्ति इस लिए दे रहा हूं कि इसे भोग कर तू जीवन में आनंद प्राप्त कर सके तुझे जीवन में अभाव न हो।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सम्पादकीय.....✍

बसन्त पंचमी का पर्व एवं वीर हकीकत राय बलिदान दिवस

पर्व भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग हैं। पर्वों के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। हमारे देश की संस्कृति की नींव हमारे ऋषियों-मुनियों द्वारा प्रदत्त वैदिक संस्कृति का ज्ञान है। भारतीय पर्व इसी वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं। संस्कृत भाषा में त्यौहारों को पर्व भी कहते हैं। पर्व का दूसरा अर्थ जोड़ होता है, जैसे हमारे शरीर में हड्डियों का जोड़ होता है। जिनके कारण शरीर सीधा होकर गति करता है। इसी प्रकार गन्ने और बाँस में भी जोड़ होते हैं। पौधों को सीधा खड़ा करने के लिए जोड़ होता है। इसी प्रकार हमारे राष्ट्रीय जीवन में यही महत्त्व पर्वों का होता है। जिस प्रकार शरीर में से हड्डियों को निकाल दें तो शरीर न रहकर केवल मांस का लोथड़ा रह जाता है, इसी प्रकार हमारे जीवन में त्यौहारों को निकाल दें तो हमारा जीवन मृत प्राय: रह जाता है। समय-समय पर आने वाले त्यौहार जहां हमारे जीवन में आनन्द उत्साह पैदा करते हैं, वहां सामाजिक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक स्वरूपों का दिग्दर्शन कराके हमें अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। हमारे देश में अनेक पर्व आते हैं जिन्हें हम मिलजुल कर आनन्द और उत्साह के साथ मनाते हैं। ऐसे ही प्रेरणा और उत्साह देने वाला बसन्त पंचमी का पर्व भी है। किसी ने ठीक ही कहा है-

है ऋतुराज का आगमन जल-थल में छवि छाई है।
प्रकृति देवी नवले रंग में रंग मंच पर आई है।

बसन्त ऋतु के आगमन से जहां दीन दु:खी जन को साहस मिलता है कि हमारा जीवन सकुशल रहेगा, उसके साथ ही प्रकृति में अतुलनीय शोभा का विकास होता है। समस्त भूमि पीली चादर ओढ़े अपनी मन्द सुगन्ध समीर से जन मानस को आह्लादित कर देती है। वनस्पति जगत में सर्वत्र नवीन परिवर्तन होता दिखाई देता है। बसन्त पंचमी के पर्व का समय ऐसा आनन्द और उत्साह देने वाला होता है कि वायुमण्ड़ल मोद और मद से भर जाता है। दिशाएं कलकण्ठा कोकिला आदि विविध विहंगमों के मधुर आलाप से प्रतिध्वनित हो उठती हैं। क्या पशु, क्या पक्षी और क्या मनुष्य सबका हृदय आनन्द से उद्वेलित होने लगता है। मनों में नई-नई उमंगें उठने लगती हैं। भारत के अन्नदाता किसान अपने दिन रात के परिश्रम को आषाढ़ी फसल के रूप में देखकर फूले नहीं समाते हैं। उनके गेहूं और जौ के खेतों की नवाविर्भूत बालों से युक्त लहलहाती हरियाली उनकी आँखों को तरावट तथा चित्त को अपूर्व आनन्द देती है। कृषि के सब कार्य इस समय समाप्त हो जाते हैं।

बसन्त पंचमी का पर्व हमें प्रेरणा देता है कि जिस प्रकार बसन्त के आने पर सम्पूर्ण प्रकृति में हलचल दिखाई देती है और उसमें परिवर्तन होता है, नव संचार होता है, चारों ओर फूल खिलने लगते हैं, उसी प्रकार हमारे मनुष्य जीवन में भी परिवर्तन होना चाहिए। हमारे जीवन में भी आनन्द और उत्साह का संचार होना चाहिए। अपनी कमियों और त्रुटियों को दूर करके उसमें सद्गुणों का संचार करना चाहिए। अगर जड़ प्रकृति ऋतुओं के अनुसार अपने में परिवर्तन कर सकती है तो हम तो चेतन प्राणी हैं। हम चेतन होकर भी अगर अपने अन्दर परिवर्तन नहीं करते, बदलाव नहीं लाते तो हमारा चेतन होने का क्या लाभ?

बसन्त पंचमी का दिन जहां ऋतु परिवर्तन की दृष्टि से अपना महत्व रखता है वहां अपने साथ एक महा बलिदानी, धर्मनिष्ठ भारतीय वीर की याद ताजा कर देता है। इस बलिदानी वीर का नाम हकीकत राय था, जिसने अपनी छोटी सी आयु में जीवन की हकीकत को समझा था, धर्म के साथ निभाया था और अपनी भारतीय परम्पराओं का मुख उज्जवल किया था। वीर हकीकत के जीवन चरित्र को पढ़ने से यह प्रेरणा मिलती है कि हमें अपने पूर्वजों के यशस्वी जीवन की प्राणपन से रक्षा करनी चाहिए। किसी में यह साहस न हो कि हमारे पूर्वजों का अपमान कर सके या हमारे धार्मिक सिद्धान्तों की खिल्ली उड़ा सके। आयु की दृष्टि से वीर हकीकत छोटे थे परन्तु अपने धर्म के प्रति उत्सर्ग का ऊंचा भाव निज बलिदान द्वारा जो प्रस्तुत किया वह किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए अत्यन्त प्रेरणा देने वाला है। वीर हकीकत को डराया गया, धमकाया गया, प्रलोभन दिए गए, अपना धर्म छोड़ने के लिए मजबूर करने की कोशिश की गई परन्तु वीर हकीकत उनके भय और प्रलोभन के जरा भी विचलित नहीं हुए। अपना धर्म परिवर्तन करके प्राणों को बचाने की कोई इच्छा प्रकट नहीं की।

धर्म पर बलिदान होने वाले ही धर्म के सच्चे प्रेमी और प्रचारक होते हैं, यह वीर हकीकत ने अपने बलिदान से सिद्ध कर दिया। 14 वर्ष की छोटी आयु होने पर भी जो भाव और श्रद्धा वीर हकीकत के अन्दर थी वह सचमुच प्रेरणादायक है। वीर हकीकत ने गीता के वचनों को सार्थक कर दिया कि। **स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।।** अर्थात् अपने धर्म के लिए मर मिटना भी कल्याणकारी होता है, दूसरों के धर्म को अपनाकर हम सुख और शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकते। आज हम थोड़े से भय और प्रलोभन के वशीभूत होकर अपने धर्म को तिलांजलि दे देते हैं। बसन्त पंचमी का पर्व हमें वीर हकीकत के गुणों को अपनाने की प्रेरणा देता है। वीर हकीकत ने अपने बलिदान से हमारा मार्गदर्शन किया है कि चाहे कितने ही कष्ट सहने पड़े, कितनी मुसीबतें सहन करनी पड़े हम अपने मार्ग से, अपने कर्त्तव्य से, अपने धर्म से कभी भी मुंह न मोड़े।

इस वर्ष बसन्त पंचमी का पर्व 12 फरवरी को आ रहा है। इस पर्व को मनाते हुए हम भी अपने अन्दर आनन्द, उत्साह और नई ऊर्जा का संचार करें। प्रकृति के साथ-साथ अपने जीवन में भी परिवर्तन करें। पर्वों के द्वारा हमारे अन्दर नई प्रेरणा तथा उत्साह पैदा होता है। पर्वों के बिना हमारा जीवन नीरस हो जाता है। नीरस जीवन को सरस बनाने के लिए हम सभी मिलजुल कर आनन्द और उत्साह के साथ अपने पर्वों को मनाएं। बसन्त पंचमी का पर्व भी ऐसा ही प्रेरणादायक तथा आनन्द और उत्साह को बढ़ाने वाला पर्व है। इस पर्व को मनाते हुए हम जहां प्रकृति के अनुसार अपने जीवन में परिवर्तन करें वहीं वीर हकीकत राय के गुणों को धारण करके अपनी संस्कृति, सभ्यता और धर्म की रक्षा करें।

-प्रेम भारद्वाज संपादक एवं सभा महामन्त्री

ब्रह्मयज्ञ (प्रथम पग)

-ले० -डॉ रूपचन्द्र दीपक प्रधान, आर्य समाज शृंगारनगर, लखनऊ

ब्रहा को जानने, मानने और प्राप्त करने का विधान ब्रहायज्ञ कहलाता है। इसे दूसरे शब्दों मे सन्ध्या कहते हैं। वैदिक संस्कृति में प्रतिदिन प्रात: एवं सायं अर्थात दो बार सन्ध्या करना प्रत्येक ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी एवं सन्यासी का कर्त्तव्य है। वैदिक सन्ध्या में एक मन्त्र को एक बार गिनने पर कुल उन्नीस मन्त्र बोले जाते हैं, किन्तु इन उन्नीस मन्त्रों को एक बार प्रात: और एक बार सायं बोल दिया जाए तो इतने मात्र से सन्ध्या पूर्ण नहीं मानी जाती। सन्ध्या की पूर्णता और सफलता के लिए अनेक पग उठाना अपेक्षित है। प्रथम पग है सन्ध्या को जानना, उसकी तैयारी और तन-मन-वचन की अनुकूलता।

सन्ध्या क्या है?

'सम्-ध्यायन्ति सम्-ध्यायते वा परब्रहा यस्यां सा सन्ध्या अर्थात् जिस चेष्टा, क्रिया या प्रक्रिया में उपासक लोग ईश्वर का भली प्रकार ध्यान करते हैं या जिसमें ईश्वर का भली प्रकार ध्यान किया जाता है, उसका नाम सन्ध्या है। स्पष्ट है कि इसमें मन्त्र पढ़ने का उल्लेख तो हुआ ही नहीं। तो क्या मन्त्र अनावश्यक गौण है? नहीं, मन्त्र न तो अनावश्यक हैं और न ही गौण या ऐच्छिक हैं। वस्तुत: मन्त्रों पर रुक नहीं जाना है अपितु मन्त्रों के माध्यम और सहायता से ईश्वर के ध्यान तक पहुंचना है। यदि मन्त्र पढ़ें किन्तु ईश्वर का ध्यान नहीं हुआ तो सन्ध्या पूर्ण या सफल नहीं हुई। यदि मन्त्र नहीं पढ़े और ईश्वर का ध्यान हो गया तो यह क्या कहलाएगा ? वस्तुत: यह अति प्रश्न है। मन्त्र के तीन स्तर होते हैं-शब्द, अर्थ और अनुभूति। प्रथम स्तर द्वितीय की प्राप्ति और प्रथम-द्वितीय स्तर मिलकर तृतीय की प्राप्ति कराते हैं। ईश्वर की अनुभूति और ध्यान तो परस्पर अ-पृथक हैं। अत: ध्यान हुआ तो मन्त्र उसमें योजित हुआ ही है।

सन्ध्या की तैयारी

प्रात: कालीन सन्ध्या सूर्योदय से कुछ पूर्व और सायंकालीन सन्ध्या सूर्यास्त के कुछ पश्चात की जाती है। यह सन्ध्या का आदर्श समय है। आदर्श स्थिति प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन प्राप्त होनी असम्भव है। इसलिए वैदिक मनीषियों ने सन्ध्या के समय के सम्बन्ध में कठोर आदेश नहीं दिए हैं। बस, सन्ध्या प्रतिदिन करनी चाहिए, प्रात: सायं दो बार करनी चाहिए, मन लगाकर करनी चाहिए और ध्यान तक पहुंचाने का यत्न करना चाहिए। तन-मन की अवस्था सन्तुलित होनी चाहिए अर्थात् शरीर शुद्ध हो, अति भूख-प्यास न हो और पेट भारी भी न हो, मन में सुख-दु:ख के अतिशय भाव न हों और पवित्रता बनी हो। वस्त्र और स्थान के विषय में कोई समष्टि-नियम नहीं बनाया जा सकता। मनुष्य 'असम्भिन्न-आर्यमर्याद:' को दृष्टि में रखकर स्वयं के लिए अनुशासन नियत कर ले। मुख की दिशा के लिए भी ऐसा ही है। सामान्यत: उदय होते सूर्य की प्राचीन या पूर्व दिशा की ओर मुख रखें। परन्तु, सन्ध्या तो ट्रेन या बस में भी की जाती है जिनकी दिशाएं बदलती रहती हैं। अत: उस दिशा में मुख कर लें कि सामने से मन्द पवन आ रहा हो।

सन्ध्या की वास्तविक तैयारी तो गुण-कर्म-स्वभाव की है। दो सन्ध्याओं के बीच 10-12 घण्टों की कालावधि होती है। इस कालावधि में अच्छे गुण-कर्म-स्वभाव रखने से अगली सन्ध्या अच्छी होती है। दूसरे शब्दों में सद्ज्ञान, सत्कर्म और सदाचरण करना। सद्ज्ञानादि से अच्छी सन्ध्या, उससे पुन: सद्ज्ञान तथा आगे पुन: अच्छी सन्ध्या क्रमानुसार होते रहते हैं।

सन्ध्या का उद्देश्य

जीवन भर के सन्ध्या-कर्म का फल है-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति। वैसे सन्ध्या गायत्री मन्त्र से प्रारम्भ की जाती है जिसमें ईश्वर की स्तुति, उपासना एवं प्रार्थना तीनों हैं। इसे सन्ध्या का सामान्य उद्देश्य कहा जा सकता है। सन्ध्या का विशेष उद्देश्य आचमन-मन्त्र में दिया है, जो इस प्रकार है-

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्त्रवन्तु न:॥
(यजुर्वेद: अ. 36, म. 12)

अर्थात् (ओ३म्) हे ईश्वर! (आप:) आप सर्वव्यापक, (देवी:), दिव्यस्वरूप, सर्वप्रकाशक एवं सर्वानन्द-प्रदाता हैं, (न:) आप हम सबको (अभिष्टये) इष्ट-आनन्द की प्राप्ति और (पीतये) पूर्णानन्द से तृप्त करने के लिए (शं) कल्याणकारी होइए तथा (न:) हम पर (अभि) सब प्रकार (शंयो:) सुख-शान्ति आनन्द की (स्रवन्तु) वृष्टि कीजिए।

इस मन्त्र से आचमन किया जाता है। सन्ध्या-विधि: में यह प्रावधान है कि यदि इच्छा या जल न हो तो आचमन के बिना ही सन्ध्या कर लें। इस प्रावधान का यह अर्थ नहीं है कि जीवन भर आचमनपूर्वक और आचमनविहीन सन्ध्या का एक समान फल है। आचमन के फल ये हैं कि इससे आलस्य एवं कफ की थोड़ी सी निवृत्ति होती है। वाणी में थोड़ा सा रस आता है और सन्ध्या में मन लगने में थोड़ी सी सहायता मिलती है। यदि ज्वर, जुकाम या जलाभाव में आचमन न करें तो हानि नहीं है किन्तु सदैव आचमनविहीन सन्ध्या करने से थोड़े-थोड़े लाभ से वांछित रहते हुए मनुष्य पर्याप्त वांछित रह जाता है।

इस प्रकार अपने बलाबल को देखते हुए प्राणायाम भी अवश्य करना चाहिए जो व्यक्ति प्राणायाम विहीन सन्ध्या करते हैं वे जीवन भर करते रहें तो भी सन्ध्या का पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

इन्द्रिय-स्पर्श मन्त्रा:

ओं वाक्-वाक् आदि मन्त्र बोलकर बारी-बारी से इन्द्रियों का स्पर्श किया जाता है। इसका प्रयोजन यह है कि इन्द्रियां शुद्ध एवं बलिष्ठ हों।

ओं वाक् वाक् :

प्रार्थना की जाती है कि मेरी वाणी वाणी बने अर्थात् जैसी होनी चाहिए वैसी हो जाए अर्थात् सम्यक् या आदर्श बन जाए। यजुर्वेद (अध्याय-23, मन्त्र 48) के अनुसार-

गोस्तु मात्रा न विद्यते।

अर्थात् वाणी के प्रभाव की मात्रा तो मापी नहीं जा सकती। जब यह सुख देती है तो वह सुख अतिमात्र होता है, जब यह दु:ख देती है तो वह दु:ख भी अतिमात्र होता है।

अत: परिवार, कार्यालय, सगे-सम्बन्धियों या सभाओं में सर्वत्र ही वाणी के प्रयोग में सावधानी बर्तनी चाहिए।

मनुस्मृति के अनुसार अच्छी वाणी में चार दोष न होने और दो गुण होने चाहिएं-

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वश:।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
-अध्याय 12, श्लोग 6

प्रथम दोष है पारुष्य अर्थात् कठोर बोलना या कटुभाषण करना। कटुभाषी व्यक्ति यह कहता है कि मैं तो सत्य बोल रहा हूं यह सुनने वाले को कटु लग रहा है तो यह सत्य-ग्राही होकर अपना दोष दूर करें। यह कहना उचित नहीं। उसके भाषण में सत्यता एवं कठोरता का मिश्रण हो सकता है। बोलने वाला सत्यता में प्रमाण हो सकता है, कठोरता में तो सुनने वाला प्रमाण होगा। ध्यान देने की बात है कि जो लोग स्वयं कटुभाषी होते हैं, वे भी दूसरों के कटुभाषण से असन्तुष्ट होते हैं।

दूसरा दोष है अनृत अर्थात् असत्य बोलना। संसार भर के पापों में असत्य किसी न किसी अंश में सम्मिलित रहता है और यदि असत्य पूर्णत: छूट जाए तो अधिकांश पापों से मुक्ति मिल जाए। यहां तक कि चोर-ठग आदि लोग जो असत्य पर आधारित जीवन जीते हैं, वे भी परस्पर असत्य से बचते हैं। ऐसी स्थिति में सद्विचारशील मनुष्यों को तो असत्य से सदा ही बचना चाहिए।

तीसरा दोष है पैशुन्य अर्थात् निन्दा-चुगली। इसका करने वाले दूसरों के दोष खोजने में लगा रहता है, यदि इतना ध्यान वह अपने दोष दूर करने में लगाए तो अवश्य श्रेष्ठ हो जाए। ऐसे व्यक्ति का विश्वास उनके सगे-सम्बन्धी भी नहीं करते। इसका व्यसन बढ़ जाने पर व्यक्ति को इसमें रस आने लगता है, फिर उसका पतन निश्चित है। खेद है कि विद्या, साहित्य एवं सत्संग में लगे व्यक्ति भी इस व्यसन में लगे देखे जाते हैं।

चौथा दोष है असम्बद्ध प्रलाप अर्थात् अनावश्यक बोलना, अधिक बोलना, उच्च स्वर में बोलना, गलत व्यक्ति से गलत स्थान पर या गलत समय बोलना। **(शेष पृष्ठ 7 पर)**

जिसकी कीर्ति है वह मरता नहीं सदैव जीवित रहता है-

ईश्वर-वेद-दयानन्द भक्त तपस्वी व त्यागी आचार्य बलदेव जी महाराज

-ले० मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला रोड, देहरादून

वेद-वेदांग, व्याकरण के पण्डित, कर्मयोगी, तपस्वी, वयोवृद्ध विद्वान्, आदर्श चरित्र के धनी, नैष्ठिक ब्रह्मचारी आचार्य बलदेव जी अब नहीं रहे। 28 जनवरी, 2016 को लगभग 85 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। महात्मा आचार्य बलदेव जी ने अपने जीवन में विद्युत विभाग की अच्छी खासी नौकरी छोड़कर युवावस्था में संस्कृत की आर्ष प्रणाली के अध्ययन को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बनाया था और इसमें कृतकार्य तो हुए ही अपितु एक दीपक की भांति अपनी विद्या के प्रकाश से आलोकित किया था। आर्य जगत के प्रसिद्ध गुरुकुल कालवां-हरियाणा की आपने स्थापना की थी जो आपका सच्चा स्मारक है। भारत ही नहीं अपितु विश्व की प्रमुख हस्ती योगाचार्य स्वामी रामदेव जी को आपके शिष्य होने का सौभाग्य व गौरव प्राप्त है। आदर्श जीवन व चरित्र के धनी आचार्य बलदेव जी का जीवन देश की युवा पीढ़ी के लिए आदर्श है। जीवन की सार्थकता शरीर को स्वस्थ, निरोगी और दीर्घायु बनाने सहित विद्या के क्षेत्र में व्याकरण व वेद-वेदांग का अध्ययन कर व उसका प्रचार कर जीवन को सफल बनाने में है। इसी पथ पर आचार्य बलदेव जी चले थे और यही जीवन शैली मनुष्य जीवन की सर्वोत्तम उन्नति का आधार व साधन रही है व आज भी है।

सभी मानवीय गुणों से पूर्ण व आदर्श आचार्य बलदेव जी का जन्म हरियाणा राज्य के सोनीपत लिए के अन्तर्गत सरगथल गांव में लगभग 85 वर्ष पहले (सन् 1930 में) एक धार्मिक माता-पिता के यहां हुआ था। आपकी अल्पायु में माता जी का देहान्त हो जाने पर पिता ने दूसरा विवाह किया। आपकी दूसरी माता जी का आपके प्रति अत्याधिक प्रेम व स्नेह था। ग्रामीण वातावरण के अनुसार आपने बी. ए. तक की शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद विद्युत विभाग में आपकी नौकरी लग गई। आपका कार्यालय झज्जर में था। अत: जब भी आर्य समाज के प्रसिद्ध गुरुकुल झज्जर में विद्युत सम्बन्धी कोई समस्या आती थी तो आप वहां प्राय: आया जाया करते थे। गुरुकुल में आर्य जगत के शिरोमणि विद्वान व सन्यासी स्वामी ओमानन्द सरस्वती जी आचार्य हुआ करते थे। बच्चों को संस्कृत पढ़ते देखकर बलदेव जी में भी इसके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। गुरुकुल में ब्रह्मचर्य सहित सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकें लेकर आपने इनका अध्ययन किया। स्वामी ओमानन्द जी के प्रवचनों का भी चमत्कारी प्रभाव आप पर होता था। स्वामी ओमानन्द जी ने भी आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया और अनेक गुरुकुलों की स्थापना की थी जिनमें गुरुकुल झज्जर सहित कन्या गुरुकुल नरेला भी सम्मिलित है। बलदेव जी कई बार रात्रि में भी गुरुकुल में ही निवास करते थे। गुरुकुलीय शिक्षा के प्रति आपका प्रेम इस सीमा तक बढ़ा कि आपने नौकरी से त्याग पत्र दे दिया और पूर्णकालिक ब्रह्मचारी व विद्यार्थी बन गए। प्रचलित स्वभाव के अनुसार उनके परिवार को उनका नौकरी छोड़ना और घर न आना पसन्द नहीं था और वह उन्हें घर ले जाना चाहते थे। इन विघ्नों को देखते हुए आपने स्वामी ओमानन्द जी की प्रेरणा से महर्षि दयानन्द के भक्त श्री देव स्वामी जी के गुरुकुल सिरसांगज के लिए अध्ययनार्थ प्रस्थान किया और वहां संस्कृत व्याकरण के आचार्य पण्डित शंकरदेव जी से अध्ययन किया। अध्ययन में कोई विघ्न उपस्थित न हो तो इसलिए आपने इस गुरुकुल में अध्ययन की जानकारी अपने परिवार को नहीं दी।

इसका ज्ञान केवल स्वामी ओमानन्द सरस्वती जी को ही था। गुरुकुल सिरसागंज में अध्ययन के दिनों में आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान्, सन्यासी और नेता स्वामी इन्द्रवेश जी आपके साथी व मित्र हुआ करते थे। दोनों ने एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी। आचार्य बलदेव और स्वामी इन्द्रवेश, इन दोनों ब्रह्मचारियों, ने माता-पिता की अनुमति मिलने की आशा न होने के कारण घर से भागकर गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की थी।

महात्मा बलदेव जी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। संस्कृत का सम्पूर्ण आर्ष व्याकरण आपको मृत्यु के समय तक कण्ठ था। संस्कृत व्याकरण के आप विलक्षण आचार्य थे। आर्य समाज के क्षेत्र में गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ एक प्रसिद्ध गुरुकुल है जहां के ब्रह्मचारी विद्यार्थियों ने खेलकूद में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक पुरस्कार प्राप्त कर देश और गुरुकुल को गौरवान्वित किया है। इस गुरुकुल के आचार्य स्वामी विवेकानन्द सरस्वती ने आचार्य बलदेव जी से अध्ययन किया है। जिन दिनों आप गुरुकुल झज्जर में स्वामी इन्द्रवेश जी आदि विद्वान आचार्यों से पढ़ते थे तो संस्कृत व्याकरण के अध्ययन से सन्तुष्टि न होने के कारण आपने गुरुकुल छोड़ने का निश्चय कर लिया था। आचार्य बलदेव जी को इस बात का पता लगने पर उन्होंने विवेकानन्द जी से बात की तो उन्होंने बताया कि वह अपने गुरुजनों द्वारा संस्कृत के अध्ययन से सन्तुष्ट नहीं है। इस पर महात्मा बलदेव जी ने कहा कि कल से मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊंगा। मैं चार बजे या इससे पहले सोकर उठ जाता हूं। यदि तुम मुझसे पहले उठ जाओ तो मुझे जगा देना अन्यथा मैं तुम्हें जगाऊंगा। इस प्रकार से प्रतिदिन चार बजे से पहले ही आचार्य बलदेव जी शिष्य विवेकानन्द जी को संस्कृत व्याकरण पढ़ाने लगे। यह क्रम चार से पांच वर्षों तक चला। इससे न केवल विवेकानन्द जी को पूर्ण सन्तोष हुआ अपितु उन्होंने संस्कृत के व्याकरण में पूर्ण अधिकार प्राप्त किया और गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ का संचालन कर वैदिक धर्म व संस्कृति सहित आर्यसमाज के गौरव को भी देश देशान्तर में स्थापित किया। देश भर में विभिन्न स्थानों पर 8 गुरुकुलों का संचालन कर रहे आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान व सन्यासी स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती आचार्य बलदेव जी के ही शिष्य हैं। आपने बताया है कि आचार्य जी व्याकरण के प्रमाणित पण्डित थे। मृत्युपर्यन्त आपको व्याकरण कण्ठस्थ रहा। इस लेख की समस्त सामग्री का श्रेय भी स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती व उनके सुयोग्य शिष्य आचार्य डा. धनंजय जी को है जिसे हमने दूरभाष पर उनसे प्राप्त किया है। आचार्य बलदेव जी ने सन् 1971 में हरियाणा के कालवां स्थान पर एक गुरुकुल की स्थापना की थी। इस गुरुकुल में उपनिषद, दर्शन व वेद आदि की योग्यता प्राप्त करने के लिए संस्कृत के आर्ष व्याकरण सहित प्राय: सभी शास्त्रों का अध्ययन कराया जाता रहा है। आज के विश्व प्रसिद्ध योग प्रचारक और पतंजलि योग पीठ के संस्थापक स्वामी रामदेव जी आपके ही गुरुकुल में आपसे सन् 1980 से 1990 के मध्य पढ़े थे। आपके अन्य प्रमुख शिष्यों में स्वामी डा. देवव्रत जी, आचार्य डा. रघुवीर वेदालंकार, आचार्य डा. यज्ञनीप जी, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती जी, स्वामी सत्यपति जी, आचार्य अखिलेश्वर जी, स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती जी, आचार्य विजयपाल जी व स्वयं आचार्य हरिदेव जी (स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी) आदि प्रमुख शिष्य हैं।

अध्यापन का आपका प्रिय विषय संस्कृत का व्याकरण ही था। आपके प्रमुख गुरुओं में स्वामी ओमानन्द जी सहित पण्डित शंकरदेव जी, पंडित राजवीर शास्त्री व डा. महावीर मीमांसक जी आदि सम्मिलित हैं। आज प्रात: आचार्य बलदेव जी के निधन से आर्य जगत में सर्वत्र शोक की लहर छा गई है। आपका अन्त्येष्टि संस्कार 29 जनवरी, 2016 को दिन के 12.00 बजे दयानन्द मठ रोहतक में हुआ। स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती, आचार्य धनंजय आर्य गुरुकुल पौधा, श्री राजेन्द्र विद्यालंकार, श्री वाचोनिधि आर्य, डा. विवेक आर्य, श्री ऋषिकेश आर्य सहित श्री मिथिलेश आर्य, श्री अजायब सिंह, श्री विकास अग्रवाल, श्री प्रवीण गुप्ता, श्री नरेन्द्र आचार्य, देवेन्द्र सचदेव, श्री धर्मवीर मिरजापुर, श्री रवीन्द्र पाहुचा, श्री सौरभ चौधरी आदि अनेक लोगों ने आचार्य बलदेव जी को श्रद्धांजलि दी है। स्वामी प्रणवानन्द ने उन्हें ईश्वर भक्त वेद भक्त, दयानन्द आर्य समाज भक्त, सच्चा धर्म संस्कृति का प्रेमी, आदर्श ब्रह्मचारी, संस्कृत विद्या का निष्ठावान प्रचारक, कर्मयोगी, तपस्वी व धर्म व संस्कृति का उन्नायक बताया है। इन्हीं शब्दों के साथ इस लेख को विराम देते हुए हम श्रद्धेय आचार्य बलदेव जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

पृष्ठ 2 का शेष-वैदिक संदेश.....

मैत्रेयी प्रति प्रश्न करती है कि आपके पास इतनी संपदा है आखिर इसे भोगकर आप भी सुख प्राप्त कर सकते हैं। वनों में जाने की क्या आवश्यकता है क्योंकि सुख आनंद इनमें है तो विरक्ति कैसी? याज्ञवल्क्य प्रत्युत्तर देते हैं जो आज के काल में भी प्रासंगिक है। धन संपत्ति इसमें सार कुछ भी नहीं है संसार में रहकर सांसारिक सुखों को भोगा अवश्य है परंतु जिस भौतिक संपत्तियों के माध्यम से केवल जीवन चलता है एवं लक्ष्य उद्देश्य है अमरत्व प्राप्ति कर जिसे पाना है तो इनको छोड़ना होगा। शायद इसी लिए ऋषि ये सब छोड़ रहे हैं। मैत्रेयी विदुषी थी उसने भी सोचा कि मैं क्यों न आधा जीवन बिताने के बाद अपना जीवन आनंद की छांव बिताकर अपने पति की हमराहं बनूं क्योंकि मेरे पति जिसे त्याज्य समझ रहें हैं उसे ग्राह्य बनाकर मुझे क्या प्राप्त होगा। इस विषय पर उपनिषदकार ने जो समझाया है वह हृदय ग्राही है।

स होवाच मैत्रेयी यन्नु मं इयं भगो: सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात कथं तेनामृता स्यामिति। नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवो पंकरणवतां, जीवितं तथैव ते जीविंत स्यात्। अमृतत्वस्य तु नऽऽशास्ति वित्तेनेति। जीवन का यथार्थ तो यह है मैत्रेयी कि यदि पृथिवी का सारा धन भी वह अपने जीवन काल में एकत्र कर भी ले तो भी जीवन में वह आनंद नहीं प्राप्त कर सकता है जिसे प्राप्त करने के लक्ष्य को लेकर वह इस संसार में आया है। जीवन भर भटकता ही रहता है और ऐसा भटकता है कि इन सब का दास बनकर अमरत्व की प्राप्ति जो उसका स्वभाव है उसे खो देता है इसी को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं- यथैव उपकरणवतां जीवतं तथैव ते जीवन स्यात याज्ञवल्क्य कहते हैं कि आज तक मैं केवल साधन जुटाता रहा और जिस उद्देश्य को लेकर साधन जुटाता रहा वह उद्देश्य हाथ ही नहीं आया। साधनों की तलाश में भटकने से मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य एवं उद्देश्य खो देता है। केवल असार चीजों को ही प्राप्त कर पाता है एवं मूल्यवान अमरत्व को छोड़ देता है। यदि उपनिषदों की ओर हम मुड़े तो जीवन की सार्थकता हमें समझ में आती है। विज्ञान आज उन्नत तो है साधन उसने जो जुटाएं हैं उन्हीं को वह विद्या मानने की भूल कर बैठा है। ऋषियों की खोज का लक्ष्य है संसार में जो रस विज्ञान ने उपलब्ध कराया है। उससे कहीं ज्यादा रस और आनंद आध्यात्मिक मार्ग प्राप्त करने में है। सांसारिक रस तो क्षणिक है किन्तु आध्यात्मिक रस तो अमृत है। ऋषियों की खोज नश्वर शरीर को केवल सुख पहुंचाने की कभी नहीं रही है, उन्होंने आत्मिक आनंद को ही सर्वोपरि माना है। इनकी जीवन शैली शरीर को ही नहीं आत्मा को दृष्टि में रखकर जीना था। कुछ लोग कह तो जरूर देते है कि आत्मा परमात्मा नहीं है किंतु परंतु ये दोनों हैं या नहीं इसे छोड़कर उन्हें मानकर ही जीवन तथा संसार की गुत्थी सुलझायी जा सकती है। गीता में भी विद्या अविद्या को आत्म और अनात्म कह कर विश्लेषित किया है। इसकी पुष्टि गीता का श्लोक 3-17 प्रतिपादित करता है।

''यस्त्वात्मर तिरे वस्यात् आत्मतृप्तश्च मानव आत्मन्येव च संतुष्ट: तस्य कार्य न विद्यते।'' जो व्यक्ति आत्मरत है आत्मतृप्त है आत्मकाम है उसने संसार में जो भी प्राप्त करना था। उसे प्राप्त कर लिया फिर कुछ प्राप्त करने की इच्छा शेष ही नहीं रहती। यह मार्ग अपेक्षाओं और लालसाओं को समाप्त करता है जो अशांति और लालसाओं को समाप्त करता है जो अशांति और उत्तेजना का कारण है। यदि यह पृथक हो जाए स्वयमेव आनंद बिछ जाता है जीवन में ईशोपनिषद भी तो यही कहता है।

असुर्यानाम ते लोका अन्धेन तमसा वृता:

तास्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति ये के चात्महनो जन:।

जो लोग संसार में विषयों के रस में डूबे रहते हैं वे आत्म हत हैं शब्दों का बड़ा सम्यक प्रयोग हुआ है आत्मरत, आत्मतृप्त, आत्मकालम तथा आत्महन गीता और उपनिषदों ने मनुष्य के सामने एक सार्थक प्रश्न खड़ा किया है कि आप क्या चाहते हैं। यदि अमृत प्राप्त करना चाहते हैं तो विद्या को अपनाइये। यदि असंतोष और संताप को चाहते हैं तो अविद्या में फंसे रहिये। अविद्या में फंसा मनुष्य आत्म हंता बनता है! विद्या को जानने वाला आत्मरत होता है। जीवन की सार्थकता को समझता है और अपने जीवन को जीवन बनाता है। गीता और उपनिषदों के संदेश को ग्रहण कर आत्मरत बनें, भटकें नहीं आत्महत न बनकर आत्मतृप्त बनें इसी में जीवन की सार्थकता है और यही हमारी जीवन का लक्ष्य है।

मकर सक्रान्ति पर्व मनाया

दिनांक 17 जनवरी 2016 को आर्य समाज, स्वामी दयानन्द मार्ग, अलवर में श्री जगदीश प्रसाद गुप्ता, प्रधान, आर्य कन्या विद्यालय समिति, अलवर की अध्यक्षता में ''मकर संक्रान्ति पर्व'' अति हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। आर्य समाज, स्वामी दयानन्द मार्ग, अलवर के 'पंडित हेतराम आर्य सभागार' में पंच कुंडीय यज्ञ प्रात: 8.30 बजे से 10.30 बजे तक पंडित शिव कुमार कौशिक एवं पुरोहित रघुवीर आर्य, सत्यव्रत सामवेदी जी, जयपुर एवं स्वामी आर्यवेश जी दिल्ली, श्री विरजानन्द जी-बहरोड, संतराम जी आचार्य-हरियाणा, सतीजा जी जयपुर द्वारा विशेष वेद मंत्रों की आहुतियों के साथ सम्पन्न कराया गया।

पांच कुण्डीय यज्ञ में 25 परिवार यजमान बने। यज्ञ मानव का सर्वोपरि कर्म है। पांच कुण्डीय यज्ञ के बाद वानप्रस्थी श्री अमरमुनि जी द्वारा मकर सक्रान्ति पर्व व यज्ञ पर प्रकाश डाला। स्वामी आर्यवेश जी ने अपने प्रवचन में कहा कि नशा मुक्ति, शराब बन्दी, भ्रष्टाचार, अन्धविश्वास, भ्रूण हत्या, बेटी बचाओ-लड़कियों की घटती संख्या पर खेद व्यक्त किया। पूरे देश के आर्य समाज में एकजुटता बने। जैसा संगठन में रहोंगे वैसे बनोगे और गोमास बन्द करना चाहिए। प्रदीप कुमार आर्य ने अपने धन्यवाद में सभी का आभार प्रकट किया। ईश्वर देवी इस समारोह की संयोजिका थी।

सर्वश्री कै. रघुनाथ सिंह, डॉ. एन. एन. गांधी, छब्बील दास, डॉ. राजेन्द्र कुमार, रामनारायण सैनी, वेद प्रकाश शर्मा, धर्मवीर आर्य, सतपाल आर्य, बी. डी. गुप्ता, ज्ञान प्रकाश मित्तल, हेमराज कल्ला, धर्मवीर आर्य, बृजेन्द्र देव आर्य, रामजी लाल शर्मा, श्रीमती सुमन आर्य, शुचि आर्य, शशि बाला भार्गव, सरोज शर्मा, मंजू शर्मा, आशा शर्मा, अंजू माथुर, आशा वर्मा, आर्य समाजों के प्रतिनिधि तथा अत्याधिक संख्या में आर्य जन उपस्थित थे। कार्यक्रम के उपरान्त पौष माह के अन्तर्गत विशेष वैदिक पौष बड़ा प्रसाद वितरित किया गया।

लाला लाजपतराय जयंती समारोह सम्पन्न

शेरे पंजाब हिन्द केसरी लाला लाजपतराय देश के स्वतन्त्रता संग्राम के महानायक थे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई में उनका बहुत योगदान रहा। उन्होंने अछूत्तोद्धार एवं समाज सुधार का बहुत काम किया। वे कहते थे कि आर्य समाज मेरी माता व देव दयानन्द मेरे धर्म पिता हैं। उक्त विचार कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे आर्य समाज के ज़िला प्रधान अर्जुन देव चड्ढा ने बालाजी इंस्टीच्यूट आफ एजूकेशन रंगबाड़ी में बी. एड. कालेज व एस.टी.सी. कालेज के शिक्षक छात्र-छात्राओं को संबोधित करते हुए व्यक्त किए।

कार्यक्रम के मुख्य वक्ता वैदिक विद्वान रामप्रसाद याज्ञिक ने लाला जी के जीवन व कार्यों पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा कि लाला जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने आजादी की लड़ाई में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। उन्होंने अंग्रेज़ों की दमनकारी नीतियों का भरपूर विरोध किया। जिसे फलस्वरूप उन्हें जेल जाना पड़ा, देश निकाला सहना पड़ा तथा ''साइमन कमीशन'' के विरोध का नेतृत्व करते हुए लाठियां खाईं, जिसमें उनका बलिदान हुआ। उन्होंने कहा कि अंग्रेज़ों की एक एक लाठी अंग्रेजी साम्राज्य के ताबूत में एक-एक कील साबित होगी।

विशिष्ठ अतिथि आर्य समाज तलवंडी के प्रधान श्रीचंद गुप्ता ने लाला जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके आदर्शों पर चलने की प्रेरणा दी।

संस्था की निर्देशक बृजबाला निर्भीक ने कहा कि लाला लाजपत राय देश के महान सपूत थे। उन्होंने उपस्थित सभी से गायत्री मन्त्र का सस्वर पाठ करवाया।

संस्था के प्रबन्धक कमल सक्सेना ने सभी आगंतुकों का आभार व्यक्त किया। शांति पाठ के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

-अरविन्द पाण्डेय प्रचार सचिव

पृष्ठ 4 का शेष-ब्रह्मयज्ञ.....

यह ऐसा ही हानिकारक है जैसे अच्छा भोजन भी गलत समय या गलत ढंग से खाने पर हानिकारक हो जाता है। दो गुण हैं सत्य भाषण और प्रिय भाषण-

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात्।

(अध्याय-4, श्लोक 138)

इस श्लोक का अन्तिम भाग है 'एष धर्मः सनातनः' अर्थात् यही सनातन धर्म है। सत्य और प्रिय बोलना सदा से सत्पुरुषों का काम रहा है, आज भी है और आगे भी रहेगा। अतः वाणी का प्रत्येक साधक सत्य-प्रिय भाषण को पूर्णतः अपनाए।

ओं प्राणः प्राणः-नासिका से दो व्यवहार होते हैं-गन्ध का ग्रहण करना और प्राण अर्थात् श्वास लेना-छोड़ना। ये दोनों उत्तम प्रकार से होते रहें। मनुस्मृति का वचन है-

श्रुत्वा स्पृष्टवा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।

न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रयः॥ -अध्याय 2, श्लोक 98

अर्थात् इन्द्रियों के माध्यम से जो सुनने, छूने, देखने, खाने, सूंघने का अनुभव होता है, उसमें अच्छा अनुभव होने पर जो अति प्रसन्न और बुरा अनुभव होने पर अप्रसन्न नहीं होता, वही जितेन्द्रिय कहलाता है। साधक को जितेन्द्रिय होना चाहिए और गन्ध-ग्रहण का गुण भी बनाए रखना चाहिए।

जहां तक प्राण का सम्बन्ध है, उपनिषद् समझाता है-अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।

(प्रश्नोपनिषद्: प्रश्न 2, श्लोक 6)

अर्थात् जैसे रथ की नाभि में अरे लगे रहते हैं, इस तरह सब कुछ प्राण में ही प्रतिष्ठित हैं। इस कारण स्वास्थ्य, आयु, बल एवं सुख के लिए प्राण को साधना अनिवार्य है। अनुशासित एवं सन्तुलित जीवन तथा प्राणायाम के अभ्यास से साधक को यत्न करना चाहिए कि प्राण शुद्ध, सम और बलिष्ठ बने रहें।

ओं चक्षुः चक्षुः-नेत्रों में देखने की शक्ति आजीवन बनी रहे, इस प्रार्थना के साथ दर्शन की गहराई भी अपेक्षित है।

ऋग्वेद का वचन है-

''उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचम्'' (मण्डल 10, सूक्त 71, मन्त्र 4)

अर्थात् जो देखता हुआ भी नहीं देखता वह कैसा नेत्रवान् ?

यदि हम नेत्रवान् होकर भी अपने मार्ग के गड्ढ़ों एवं कांटों को न देख पाए, शत्रु-मित्र की पहचान न कर पाएं, क्षणिक सुखों के परिणाम को न देख पाए और धर्म-अधर्म के बीच की सूक्ष्म रेखा को न देख पाए तो हम कैसे नाशवान् हैं। यजुर्वेद की शिक्षा है-

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (अ. 36, म. 18)

अर्थात् हम सब लोग एक-दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें।

वैसे प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी को मित्र की दृष्टि से देखता ही है, किन्तु साधक को इस क्षेत्र का विस्तार करना है। वह सैंकड़ों, फिर हज़ारों, फिर लाखों और सब मनुष्यों को मित्र की दृष्टि से देखें, समस्त प्राणियों को इस दृष्टि से देखें। हमें अपने नेत्र, दर्शन और दृष्टि को ऐसा उत्तम बनाना है।

ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्:-हम कानों से बहुत कुछ सुनते हैं। यह सब सुनने योग्य नहीं होता। यजुर्वेद की शिक्षा है-

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम (अ. 25, म. 21) अर्थात् हम सदा कानों से भद्र सुनें। हम अपने कानों से अपनी प्रशंसा सुनने को लालायित न रहें, दूसरों की निन्दा सुनने में कान न लगाएं, अपितु हमें निरन्तर सुननी चाहिए-

1. ईश्वर की स्तुति-प्रार्थनोपासना
2. वेद शास्त्र के उपदेश
3. सत्पुरुषों के वचन
4. दीन-दुःखियों की पुकार
5. सर्वोपकार की योजना

ओं नाभिः-नाभि शरीर का केन्द्र है, हम इसका चिन्तन करके जीवन को सन्तुलित बनाएं। हम सृष्टि की केन्द्र स्वयं को न समझें अर्थात् अभिमानी न हों। सृष्टि का केन्द्र ईश्वर है, अतः हम सब उसके उपासक और आदेश-पालक बनकर रहें। यजुर्वेद का वचन है।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। (अ. 23, म. 62)

अर्थात् विश्व का केन्द्र है यज्ञ या उत्तम आचरण।

हम तन, मन, धन से यज्ञ करते रहें, मन, वचन, कर्म से उत्तम आचरण करते रहें और सन्तुलित जीवन जीएं।

ओं हृदयम् :-'हृदय' द्वि-अर्थक शब्द है। एक अर्थ है शरीर में रक्त संचार करने वाला भौतिक अंग और दूसरा अर्थ है भावनाओं का केन्द्र जहां जीवात्मा भी रहता है। ये दोनों ही उपयोगी बने रहें। रक्त संचार सुव्यवस्थित रहे, यह आवश्यकता जीवन भर रहती है। सो, यह स्थिति सदा बनी रहें भौतिक हृदय छाती के वाम पक्ष में होता है। भावनाओं का केन्द्र जो हृदय कहलाता है वह छाती के मध्य भाग में होता है। इसके विषय में उपनिषद् की शिक्षा है-

यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्त राकाशस्त-स्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्ट-व्यम्। (छान्दो-ग्योपनिषद्: अ. 8, खण्ड 1, श्लोक 1) अर्थात् ब्रह्मपुर के भीतर सूक्ष्म कमलाकार स्थान में सूक्ष्म आकाश के भीतर स्थित वस्तु का अन्वेषण करना चाहिए।

यह ब्रह्मपुर हृदय का गर्त है, जहां जीवात्मा का परमात्मा से मिलना कराना सन्ध्या का उद्देश्य है। अतः श्रद्धा और निरन्तरता से इस प्रयत्न में लगे रहना चाहिए।

ओं कण्ठः-कण्ठ में स्वर-यन्त्र लगा होता है जिससे वाणी में स्वर आता है। वर्णोच्चारण शिक्षा के अनुसार नाभि के नीचे से ऊपर उठता हुआ नाद (शब्द) कण्ठ में पहुंचकर वर्ण रूप लेता है। यही मुख से बाहर निकलकर सुनने में आता है। इस प्रकार कण्ठ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है और श्रेष्ठ मनुष्य या आर्य व्यक्ति या आध्यात्मिक साधक को इसकी साधना करना बहुत आवश्यक है।

ओ शिरः-सिर में मस्तिष्क का स्थान है जिसमें बुद्धि का वास है। यह व्यष्टि का द्युलोक है। जैसे समष्टि में सम्पूर्ण प्रकाश द्युलोक से है, ऐसे ही व्यष्टि में सम्पूर्ण मस्तिष्क से है। मनुष्य किसी बात को जान सके, उस पर गुण-दोष से विचार कर सके, निर्णय ले सके, अपने तथा अन्यों के लिए उपयोगी बना सके, स्मरण रख सके और किसी को समझा सके, इसके लिए शिर या मस्तिष्क की साधना अपेक्षित है। यजुर्वेद (अ. 36, म. 17) कहता है-'द्यौः शान्तिः' अर्थात् द्युलोक शान्त है, ऐसे ही मनुष्य का मस्तिष्क शान्त रहे।

ओं बाहुभ्यां यशोबलम्:-बाहु या भुजाएं कर्म और बल की द्योतक हैं। जैसे समाज में क्षत्रिय, वीर और कर्मठ मनुष्य हैं, ऐसे मनुष्य के शरीर में भुजाएं हैं। इन्द्रिय-स्पर्श मन्त्रों का आशय है कि भुजाओं में बल बना रहे। बल की महिमा समझाते हुए छान्दोग्योपनिषद् (अध्याय 7, खण्ड 8, श्लोक 1) में ऋषि सनत कुमार नारदमुनि से कहते हैं-

बलं वाव विज्ञानाद् भूयः।

अर्थात् बल विज्ञान से बढ़कर है।

विज्ञान संसार की श्रेष्ठतम वस्तुओं में है, किन्तु अनेक विज्ञानवानों को एक बलवान हिला देता है। मनुष्य के लिए बल सर्वोज्ज तो नहीं है तथापि उच्च पदार्थों में एक है। इसलिए प्रार्थना है कि भुजाओं में बल बना रहे।

भुजाओं से यश की भी कामना की गई है। वस्तुतः यश कोई कर्म नहीं अपितु कर्मों का फल है। जैसे दर्पण में मुख देखा जाता है, जैसे मुख होता है वैसा प्रतिबिम्ब बनता है, मुख में परिवर्तन किया जा सकता है और प्रतिबिम्ब स्वयंमेव तदनुसार हो जाता है। इसी प्रकार कर्मानुसार फल स्वयमेव हो जाता है। मनुष्य को ऐसे फल की इच्छा होती है जिससे उसे यश प्राप्त हो। सो कर्म अच्छा होना चाहिए और फिर उससे यश भी अच्छा मिलना चाहिए।

ओं करतल करपृष्ठेः-हाथों से हथेली ओर का भाग करतल और उलटी ओर का भाग करपृष्ठ कहलाता है। व्यवहार में करतल का अर्थ है लेना और करपृष्ठ का अर्थ है देना। प्रत्येक मनुष्य लेता है और देता भी है। वह लेने या देने को शून्य नहीं कर सकता। उसका उत्तम, मध्यम, अधम होना इस बात से निर्धारित होगा कि वह लेता अधिक है या देता अधिक है ? अधिक देने वाला उत्तम, बराबर लेने-देने वाला मध्यम और अधिक लेने वाला अधम होता है। इस लेने-देने में उत्तमता स्थापित करना और फिर ईश्वर को सर्वस्व अर्पण कर देना अभीष्ट है। इस सम्बन्ध में पंडित रामचरण शर्मा शास्त्री कहते हैं-

निकृष्टजन की ऐसी वृत्ति-मेरा सो मेरा, तेरा भी मेरा।

मध्यमजन की ऐसी वृत्ति-तेरा सो तेरा, मेरा सो मेरा।

उत्तम जन की ऐसी वृत्ति-तेरा सो मेरा भी तेरा।

ब्रह्मनिष्ठ कहता है-'यह सब झूठ-झमेल, न तेरा न मेरा॥'

वेदवाणी

परमेश्वर का मन्यु

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः॥

ऋ० ८।६।४; साम० पू० २।१।५।३; अथर्व० २०।१०७।१

विनय–इन्द्र परमेश्वर जहां हमारे पिता हैं, उत्पादक और पालक हैं, वहां वे हमारे कल्याण के लिए रुद्र भी हैं संहारकर्त्ता भी हैं। जब जगत् में किसी स्थान पर संहार की आवश्यकता आ जाती है तो प्रभु अपने मन्यु को प्रकट करते हैं, मानो अपना तीसरा नेत्र खोल देते हैं, अपने तीसरे रूप को प्रकाशित करते हैं। उस कल्याणकारी शिव के मन्यु का तेज जब देदीप्यमान होने लगता है तो नाश होने योग्य सब संसार पतङ्गे की भांति आ-आकर उसमें भस्म होने लगता है; मन्यु का पात्र कोई भी व्यक्ति बच नहीं सकता, सब बहे चले आते हैं। देखो, समय-समय पर बड़े-बड़े संग्राम, दुष्काल या महामारी आदि रूपों में प्रभु का वह महाबल वाला मन्यु जगत् में प्रकट होता रहता है। सब मनुष्य अपने विनाश की ओर खिंचे चले जा रहे होते हैं, पर उन्हें यह मालूम नहीं होता। जैसे सब नदियां समुद्र की ओर बहली चली जा रही हैं व उसमें जाकर समाप्त हो जाएंगी, लीन हो जाएंगी, उसी प्रकार प्रभु का मन्यु काल-समुद्र बनकर उन सब प्राणियों को अपनी ओर खींचता जा रहा है, जिनका कि समय आ गया है। मनुष्यों के किए हुए पाप उन्हें विनाश की ओर वेग से खींचे ले जा रहे हैं जिन्होंने इस संसार को तनिक भी तह के अन्दर घुसकर देखा है, वे देखते हैं कि किस-किस विचित्र ढंग से मनुष्य अपने मृत्युस्थल की ओर खिंचे चले जा रहे हैं। धन्य होते हैं अर्जुन-जैसे दिव्य दृष्टिपात पुरुष जिन्हें काल का यह आकर्षण दिखाएं दे जाता है और जो देखते हैं कि "यथा नदीनां बह्वोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति। तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति।" हम लोग तो मौत के मुंह में घुसे जा रहे होते हैं, परन्तु कुछ पता नहीं होता। हममें से अपनी शक्तियों का बड़ा गर्व करने वाले बड़े-बड़े प्रख्यात लोग जिस समय संसार को जितने अभिमान के साथ अपना पराक्रम दिखा रहे होते हैं, उसी समय वे उतने ही वेग से मृत्यु की ओर दौड़े जा रहे होते हैं, परन्तु उन्हें कुछ पता नहीं होता। जब उनका सब ठाठ एक क्षण में गिर पड़ता है, सामने मौत खड़ी दिखती है, तब जाकर प्रभु का रुद्ररूप उन्हें दिख पड़ता है। प्यारो! तब तुम अभी से क्यों नहीं देखते कि उसके मन्यु के सामने सब संसार झुका पड़ा है। पापी होकर कोई भी मनुष्य उसके सम्मुख खड़ा नहीं रह सकता। जिससे तुमने अभी से उनके मन्यु का पात्र न बनने की समझ पा सको।

वैदिक विनय से साभार

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब आर्य समाज स्थापना दिवस राज्य स्तर पर मनाएगी

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा आर्य समाज स्थापना दिवस जालन्धर में 8 अप्रैल 2016 को राज्य स्तर पर मनाया जाएगा। इसकी जानकारी देते हुये सभा महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी ने बताया कि 1 फरवरी 2016 को सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी की अध्यक्षता में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की कार्यकारिणी की एक बैठक सभा कार्यालय में हुई जिसमें आर्य समाज स्थापना दिवस को राज्य स्तर पर मनाने के लिये प्रस्ताव पारित किया गया। उन्होंने बताया कि इस अवसर पर आर्य समाज के बहुत बड़े बड़े विद्वान, महात्मा एवं संन्यासी पधारेंगे। इस सम्मेलन में पंजाब से लगभग 150 आर्य समाजों के प्रतिनिधि एवं आर्य शिक्षण संस्थाओं के पदाधिकारी एवं सदस्य भाग लेंगे। सभा ने इसकी तैयारी अभी से शुरू कर दी हैं। सभा महामंत्री जी ने बताया कि इस सम्मेलन की सफलता के लिये अभी से समितियों का गठन किया जा रहा है ताकि इस सम्मेलन को भव्य रूप दिया जा सके। **–प्रेम भारद्वाज सभा महामंत्री**

गुरुकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

100 गुरुकुल शताब्दी

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताज़गी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com**
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।